खण्ड: 1, अंक: 3 अक्टूबर 2018

संश्लेषण

डी सी आर सी मासिक पत्रिका

राजनीतिक दल अधिकार दायित्व लोकतांत्रिक व्यवस्था सरकार ऐतिहासिक भ्रष्टाचार दलीय व्यवस्था मुख्य हित मंत्रालय मूल्य सुधार राज्य सदाचार राजनीतिक

नैतिकता और राजनीति

विचार विमर्श महिला नौकरशाही चुनाव मंत्री छात्र नैतिक नागरिक गठबंधन संविधान स्वतंत्रता पैसा प्रचार मताधिकार ईमानदारी

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

मुख्य संपादक
प्रो. सुनील के चौधरी

संपादक
डा. रमेश भारद्वाज
नागेन्द्र कुमार
शरद कुमार यादव

संपादकीय मंडल
डा. अभिषेक नाथ
कुँवर प्रांजल सिंह
आशीष कुमार शुक्ल

© डीसीआरसी 2018

रूपाकंनः आर किशोर

संश्लेषण
मुख्य कथ्यः नैतिकता और राजनीति

अनुक्रमिका

संपादकीय

1.	नैतिकता और राजनीतिः एक अंतःक्रिया	– डा० अभिषेक नाथ	3–5
2.	राजनीतिः नैतिकता बनाम अवसरवादिता	– डा० महेश कौशिक	6–7
3.	भारतीय मूल्य, नैतिकता और राजनीति	– चन्दन कुमार	8–10
4.	भारतीय समाज में नैतिकता एवं राजनीतिक प्रभाव	– राम किशोर	11–12
5.	समकालीन विश्व में नैतिकता और राजनीति	– शिम्पी पांडे	13–15
6.	नैतिकता की राजनीति– एक लैंगिक परिप्रेक्ष्य	– रजनी	16–18
7.	राजनीति और नैतिकताः नारीवादी दृष्टिकोण	– मेघा	19–21
8.	संवैधानिक नैतिकता	– अलिशा ढिंगरा	22–24
9.	राजनीतिक आचार व नैतिकताः एक द्वंद्वात्मक सम्बन्ध	– पवन कुमार	25–26
10.	नव उदारवादी आर्थिक नीति के मंच पर नैतिकता और राजनीति	– कुँवर प्रांजल सिंह	27–28

संपादकीय

विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका, संश्लेषण के तृतीय अंक के प्रकाशन से हमें अपार हर्ष हो रहा है। हिन्दी की यह पत्रिका शोध केन्द्र से जुडे समस्त शोधार्थियों, शिक्षार्थियों एवं विद्यार्थियों द्वारा समसामयिक मासिक विषय पर एक सामूहिक लेख प्रकटीकरण का प्रयास है। वर्ष 2018 के अक्टूबर माह में राजनीति से जुडे विषय नैतिक मूल्यों की कसौटी पर विश्लेषित हुए। विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र ने 'नैतिकता और राजनीति' विषय पर लेख आमंत्रित किये। दस उत्कृष्ट लेखों को सम्पादकीय मंडल ने चयनित किया जो आप सभी के समक्ष एक प्रकाशित पत्रिका के रूप में उल्लेखित हो रहे हैं। ये समस्त लेख न केवल राजनीति व नैतिकता के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करते हैं अपितु भारत के विशेष संदर्भ में एक मूल्यवादी राजनीति पक्ष की महत्ता को भी उद्धृत करने का प्रयास कर रहे हैं।

संश्लेषण के तृतीय अंक के समस्त लेख मौलिक होने के साथ–साथ राजनीतिक जीवन से जुड़े आधारभूत बिंदुओं को प्रकट करते हैं। लेखकों के विचार स्वतंत्र चिंतन के परिचायक हैं तथा सम्पादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को संपादन के माध्यम से किसी भी प्रकार प्रभावित व परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। व्यक्तिगत लेखों में प्रस्तुत तथ्य एवं मत लेखकों के स्वंय की रचनात्मकता, सृजनात्मकता एवं मौलिकता को प्रदर्शित करती है।

संश्लेषण के तृतीय अंक में प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम वर्ष 2018 के नवम्बर माह के अपने चतुर्थ समसामयिक एवं महत्वपूर्ण अंक में और अधिक गुणवत्ता लाने का प्रयास करेंगे।

संपादक मंडल
शुक्रवार, 30 नवम्बर 2018

1

नैतिकता और राजनीतिः एक अंतःक्रिया

डा० अभिषेक नाथ
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नैतिकता और राजनीति के बीच अंतःक्रिया को समझने के लिए राजनीति की, एक क्रिया के रूप में बदलती प्रकृति को समझना आवश्यक है क्योंकि नैतिकता देश काल के अनुसार परिवर्तनों को धारण नहीं करती। नैतिकता का सन्दर्भ सदैव इस तथ्य से जुड़ा रहता है कि समाज या समुदाय का सम्मिलित हित क्या है? और समुदाय के हित में क्या अच्छा है? अतः नैतिकता राजनीति के इर्दगिर्द एक ऐसा घेरा बनाती है जो समुदाय के हित में, अच्छे और स्वीकारयोग्य तथा बुरा और त्याज्ययोग्य जैसे निर्णयों को निर्धारित करती है।

राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक शक्ति के प्रयोग द्वारा समुदाय के हित के लक्ष्य को प्राप्त करना है। अतः आरंभिक चिंतकों ने राजनीति को एक ऐसे उत्तरदायित्व के रूप में समझा जिसका लक्ष्य और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन दोनों ही अनिवार्य रूप से नैतिकता की परिधि में समझे गए। मनु, सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि राजनीतिक विचारकों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। आधुनिक समय में महात्मा गाँधी, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला जैसी हस्तियों को भी इस श्रेणी का विचारक कहा जा सकता है जिन्होंने साध्य और साधनों की पवित्रता पर बल दिया। महत्वपूर्ण यह है कि इन विचारको के लिए राजनीति एक उत्तरदायित्व और समाज की सेवा का कार्यकलाप है। इस सन्दर्भ में नैतिकता और राजनीति की अंतःक्रिया के बीच कोई विरोधाभास नहीं दिखता है।

एक कार्यकलाप के रूप में राजनीति का दूसरा पक्ष है, राजनीति को एक व्यवसाय के रूप में समझना। इस सन्दर्भ में राजनीतिक क्रियाकलाप के रूप में सामुदायिक हित का लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के साधन दोनों ही नैतिकता के बंधनों को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि तब राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में नहीं रह जाती, बल्कि इसका उद्देश्य इस शक्ति की किन्ही भी तरीकों से प्राप्ति और उसे बनाए रखने तक सीमित हो जाती है। जो कि नैतिकता को राजनीति के सन्दर्भ में एक अवांछनीय और एक बाधा के रूप में परिभाषित करती हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है जहाँ व्यक्तियों ने राजनीतिक शक्ति का प्रयोग राजनीतिक लक्ष्यों और साधनों को अपने व्यक्तिगत हितों के अनुरूप परिभाषित कर राजनीति और नैतिकता के बीच किसी भी प्रकार के अंतर्संबंध को नकार दिया. मेकियावेली, बिस्मार्क, चीनी यथार्थवादी विचारक सन जू (**Sun Tzu**) और कुछ हद तक कौटिल्य जैसे विचारकों को इसमें शामिल किया जा सकता है।

आज यह एक स्थापित तथ्य के रूप में माना जाने लगा है कि राजनीतिक क्रियाकलाप से जुड़कर आप अपने हाथों को गन्दा होने से नहीं बचा सकते। राजनीतिक नैतिकता और नैतिक राजनीति जैसे शब्द हाशिये पर पहुँच गए है। मेरा मानना है कि नैतिकता और राजनीति के बीच इस संबंधविच्छेद को समझने के लिए हमें आत्मा और मस्तिष्क के अंतर्द्वंद को समझना होगा। आधुनिकता और समाज के बढ़ते लौकिकीकरण जिसने मानसिक तार्किकता को आत्मिक निर्णय के ऊपर स्थापित किया है राजनीति की प्रकृति में ऐसे रूपान्तरणों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। राज्य की एक उच्चतर तार्किकता के रुप में संस्थानीकरण और सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के रूप में सामाजिक क्रियाकलापों के वर्गीकरण ने इसे पुष्टता प्रदान की है। तार्किकता को अत्यधिक महत्व देते हुए मानव गतिविधियों के भौतिक और अध्यात्मिक के रूप में विभाजन ने नैतिकता के दायरे को भी विभाजित किया है, जहाँ भौतिक गतिविधियों को लौकिकता से जोड़कर राज्य और समाज की प्रमुख और सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में स्थापित किया गया है। जिसने नैतिकता सम्बन्धी वाद–विवाद को आध्यात्मिक दायरे में निष्काषित या सीमित कर दिया है। आश्चर्य नहीं है कि जहाँ पहले सम्भ्रांत और राजनीतिक क्रियाकलाप से जुड़े वर्ग को नैतिकता का वाहक और उदाहरण प्रस्तुत करने वाला माना जाता था, जिसका अनुकरण आम नागरिक करते थे, और जिससे विचलन संभ्रांत वर्ग के पतन का कारण माना जाता था।

आज नैतिकता की ऐसी किसी सीमा को भौतिक क्षेत्र में विचारणीय नहीं माना जाता। हम जनता की नैतिकता और नैतिक आचरण की बात तो करते है लेकिन राजनीतिक कार्यकलाप से जुड़े लोगों के लिए ऐसी ही नैतिकता को आज अपवाद के रूप में या व्यक्तिगत विशिष्टता के रूप में देखा जाता है। हाँ, इस क्षेत्र में भ्रष्ट आचरण या भ्रष्टाचार को एक व्यकितगत समस्या जरुर माना गया है जिसके लिए सजा के प्रावधान का संस्थानीकरण किया गया है, लेकिन यहाँ ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि यह इस क्षेत्र में संस्थाओं के नैतिक आचरण या नैतिकता की बात नहीं करता। अतः इसमे क्या आश्चर्य है कि आज आम जनता ने भी नैतिक व्यवहार का विचार अपने अध्यात्मिक क्षेत्र तक सीमित कर दिया है और लौकिक मामलों अपने नैतिकता विहीन आचरण को उद्धत है. अगर यह कहा जाए कि एक सभ्य, तार्किक और लौकिक समाज ने हमें नैतिकताविहीन समुदायों के रूप में स्थापित कर दिया है तो गलत नहीं होगा। आज ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल जैसी संस्थाएं आधुनिक राज्यों के लिए भ्रष्टाचार सूचकांक बनाती हैं, ईमानदारी सूचकांक नहीं। भारत जैसे देश में कम भ्रष्ट नौकरशाहों की सूची बनाई जाती है और कम भ्रष्ट राजनेताओं की बात की जाती है, ईमानदार और नैतिक की नहीं।

न केवल राज्य बल्कि वैश्विक स्तर पर इस नैतिकता विहीन राजनीतिक क्रियाकलापों ने सम्पन्नता और विपन्नता, विलासिता और आकाल, विकसित और अविकसित, चौधरी और अनुयायी, शक्तिशाली और शक्तिविहीन, उत्तर और दक्षिण के रूप में विश्व के विभाजन को जन्म दिया है तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कानून, सजा और जेल के प्रावधान समाज में भ्रष्टाचार नहीं रोक सकते और समाज को नैतिक तो बिल्कुल भी नहीं बना सकते है।

आवश्यकता है आत्मा और मस्तिष्क रूपी इस द्वैधता को समाप्त करने की। हमें यह बिल्कुल भी नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों एक विपरीत विचार हैं और इनके बीच संश्लेषण नहीं हो सकता जैसे कि पाश्चात्य आधुनिकता के पैरोकारों ने स्थापित किया है। इसके लिए कोई बहुत बड़े उथल–पुथल और सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं है। अन्यथा एक ही समय काल में और अलग–अलग समय काल में दोनों ही तरह के विचारों की उपस्थिति हमें देखने को नहीं मिलती। हमें बस यह देखने की आवश्यकता है कि हमारे तार्किक निर्णय कितने ज्यादा आत्मिक है, क्योंकि आत्मिक सोच अपने अन्दर सम्पूर्ण मानव समाज के सामूहिक हित को धयान में रखता है। ऐसा भी नहीं है कि ये विचार केवल राज्यों की सीमाओं तक ही कार्यरूप दिए जा सकते है। क्या हम वर्तमान संयुक्त राज्य अमरीकी सरकार की वैश्विक तापन से निपटने की वैश्विक प्रयास से बाहर आ जाने के तार्किक निर्णय को आत्मिक सोच मान सकते हैं, कदापि नहीं। अतः आत्मिक सोच से संश्लेषित तार्किक निर्णय एक ज्यादा न्यायपूर्ण और नैतिक समाज की स्थापना करने में सक्षम हो सकता है, ऐसी आशा की जा सकती है. इसके लिए आवश्यकता है कि राजनीतिक क्रियाकलाप एक सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में लिया जाए। तब हम नैतिकता और राजनीति की नहीं बल्कि नैतिक राजनीति की बात करते दिखाई देंगे।

♦♦♦♦♦

2

राजनीतिः नैतिकता बनाम अवसरवादिता

डा० महेश कौशिक
अध्येता, विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय

सत्याग्रह ही नैतिकता का सर्वोच्च रूप है। – महात्मा गाँधी

महात्मा गांधी का यह कथन नैतिकता को उसके सर्वोच्च रूप में स्थापित करता है, जहाँ व्यक्ति की नैतिकता उसके सत्य के प्रति आग्रह में ही निहित होती है। इस संदर्भ में यदि उसके राजनीतिक व्यव्यहार को लिया जाए तो यहाँ भी उससे नैतिकता की अपेक्षा की जाती है जो गाँधी जी के अनुसार सत्य के प्रति आग्रह में परिलक्षित होती है, परंतु वर्तमान समय में राजनीति उस में उस स्थिति में है, जहाँ नेताओं से नैतिक व्यवहार की अपेक्षा नगण्यता के स्तर पर पहुँच चुकी है तथा उसे अवसरवादिता के पर्याय के रूप में देखा जाने लगा हैं। भारत में भी राजनीति में नैतिकता की परिभाषा तथा मानदण्ड परिवर्तित हो रहे है, जो स्वार्थप्रेरित भावनाओं की अभिव्यक्ति से अधिक कुछ नहीं है। इसी का परिणाम है कि आम व्यक्ति राजनीति से निरन्तर दूर होता जा रहा है। किंतु क्या राजनीति का प्रचलित अर्थ ही उसका वास्तविक अर्थ है? वास्तव में राजनीति अपने प्रचलित संकुचित अर्थ से अत्यधिक व्यापक है जिसकी सीमा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रत्येक व्यक्ति समाहित होता है। डॉ. बिरकेश्वर प्रसाद सिंह के अनुसार– राजनीति प्रत्येक समुदाय, संस्था, देश या अंतर्राष्ट्रीय संगठन में पाई जाती है, चाहे वह छोटे हों या बड़े, संगठित हों या असंगठित, आदिम हों या आधुनिक। इस प्रकार राजनीति अपने व्यापक अर्थ में सभी व्यक्तियों और संस्थाओं को समाहित किये हुए है।

वास्तव में नैतिकता का प्रश्न वहीं उठता है जहां कार्य करना या ना करना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है। जहाँ मूल प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य होता है वहाँ नैतिकता का प्रश्न नहीं उठता। अतः नैतिकता सही और गलत, अच्छाई और बुराई, सत्य और असत्य का ज्ञान कराकर परिस्थिति विशेष में सही निर्णय लेने में सहायता करती है जिसके लिये सामाजिक सहमति और शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार नैतिकता सत्य, अच्छाई, पवित्रता, ईमानदारी जैसे गुणों को समाहित करती है जो सामाजिक व्यवहार के प्रतिमान का निर्धारण करते हैं किंतु जिनमे देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन स्वीकार्य होता है।

अधिकांश सामाजशास्त्री मानते हैं कि हम भौतिक रूप में तो तीव्र गति से विकास कर रहे हैं किंतु उससे भी अधिक गति से नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इसी का परिणाम हमें समाजिक पतन के रूप में दृष्टिगत होता है। मनुष्य स्वार्थी है किंतु सदैव यह प्रयास किया

जाता रहा है कि वह अपने हित से अधिक अपने समाज और राष्ट्र तथा संपूर्ण मानवता को महत्व प्रदान करे व इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में अपेक्षित आचरण करे। इसी से संसार को सुख, शांति और प्रगति के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है। किंतु यह अनुभव किया जा रहा है कि बीते कुछ दशकों में भारतीय राजनीति में किसी भी प्रकार से अपने स्वार्थ को पूरा करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है। इसीलिए नैतिक मूल्यों का ह्रास केवल राजनीति में ही हो रहा हो ऐसा नही है बल्कि सभी क्षेत्रों में यह पतन देखा जा सकता है।

भारत में प्राचीन समय से लेकर आजतक आदर्श राजनीति के ऐसे अनेको उदाहरण मिलते हैं, जहाँ उन्होने समाज और राष्ट्र की एकता व अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपना सर्वस्व त्याग किया है। गांधी जी ने भी सदैव इसी आदर्श को स्थापित करने का प्रयत्न किया। गांधी के विचारों में प्रेम व त्याग की केन्द्रीयता थी। सत्य और शुभ के लिए प्रतिबद्धता थी। साधन और साध्य के ज़रिए समाज को निर्मल बनाने की लगन थी। किन्तु वर्तमान समय में जब लोहिया ने राजनीतिक अवसरवादिता को एक नए रूप में प्रस्तुत किया तो उसे अव्यवहारिक कहा गया। उन्होंने कहा था कि कॉग्रेस को सत्ता से बाहर करने के लिए सभी दलों को एक होना चाहिए। किन्तु यह सिद्धांत तब से लेकर आज तक हम अनेकों बार व्यवहार में घटित होते हुए देख रहे हैं। क्या अनेक दलों का एक साथ मिलकर सरकार बनाना अनैतिक माना जाए। वर्तमान में अवसरवादिता की राजनीति को व्यवहारवादी राजनीति के नाम से परोसा जा रहा है? किन्तु क्या केवल सत्ता प्राप्ति या किसी एक दल के विरोध में सभी सिद्धांतों को छोड़कर सभी विरोधी दलों का एक हो जाना नैतिकता के पैमाने पर उचित ठहराया जा सकता है?

लोहिया ने जिस समाजवाद की नींव रखी उनके अनुयायियों ने उसमें सबसे पहले लोहिया के सिद्धांतों को ही समाप्त करने का प्रयास किया। आज उनके द्वारा पोषित दल परिवारवाद से लेकर स्वार्थपूर्ण राजनीति की रोज़ नई परिभाषा गढ़ रहे हैं। यह भी सच है कि लोहिया को समाजवादी नेतृत्व और समाजवादी पार्टी ने ही हाशिये पर धकेलने का पाप किया। समाजवादी नेतृत्व ने जिस गरीब और शोषित समाज से ग़रीबी को दूर करने का नारा दिया वह स्वयं उस वर्ग से दूर हो गया। सभी दल समाज में नैतिकता की दुहाई दे रहे हैं किन्तु दूसरों के लिए। नैतिकता दूसरों के लिए है और स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता अपने लिए।

राजनीति से हम प्रत्यक्ष रूप से न भी जुड़े हों तो भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इसलिए राष्ट्र की राजनीति में तब तक सुधारात्मक परिवर्तन सम्भव नहीं है जब तक सभी नागरिक, विशेष रूप से शिक्षित व्यक्ति न केवल राजनीति को जानने और समझने का प्रयास करें बल्कि अपने–अपने स्तर पर उसे प्रभावित करने का प्रयास भी करें।

♦♦♦♦♦

3

भारतीय मूल्य, नैतिकता एवं राजनीति

चन्दन कुमार
सह–प्राध्यापक, पाटलीपुत्र विश्वविद्यालय

हमारे देश के ऋषि महर्षियों ने आचरण की जो पंजी दी हैं, उसे धारण करना होगा, आदर्शो एवं मूल्यों का जो खजाना सौंपा हैं, उसे हर बच्चे के हृदय रूपी धरती पर बोना होगा एवं धारण करना होगा। अनेकताओं एवं विविधताओं से भरे इस देश में एकता स्थापित करनी होगी, प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर ''मत–निरपेक्षता'' के भाव लाने होंगे ''स्व'' की जगह ''आत्म'' भाव आवश्यक होगा। भाषा विकास से भी अधिक महत्व नैतिकता एवं आध्यात्मिक विकास को देना चाहिये। इस विकास के अभाव में कोई भी समाज कभी सफल नहीं हो सकता। ऐसे में शिक्षक और अन्य सभी संस्थाओं का दायित्व हैं कि शिक्षण अधिगम प्रकिया को इस तरह संचालित करें कि बच्चे मूल्य शिक्षा ग्रहण कर सकें। यदि शिक्षक मूल्य शिक्षा से पलायन करता हैं, जी चुराता है और मूल्य शिक्षा नहीं देना चाहता तो सभी विद्यालयों को बन्द कर देना चाहिए। यह मानव अनुभूति का ऐसा विषय है, जिनसे कोई वंचित नहीं रह सकता, न वंचित रहना चाहिए। मूल्यों और नैतिकता के सभी व्यवहारिक तथ्यों को बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिये। मूल्य का अर्थ योग्यता या महत्व मूल्य के लिये संस्कृत में इष्ट शब्द हैं, जिसका अर्थ वह जो इच्छित हैं। अर्थात वह जो इच्छाओं की आवश्यकताओं की संतुष्टि करें, वहीं मूल्य हैं। मूल्य वह है जो इच्छा की सनतुष्टि करें। सत्य और अंहिसा जैसे सर्वोच्च मानवीय मूल्यों के सफल प्रयोक्ता गांधी के इस देश में मूल्यों की जैसी अवमानना हो रही हैं, वह सभी के लिये चिन्ता का विषय हैं।

मूल्य केन्द्रित राजनीति के नाम पर जिस तरह मूल्य हीनता पनप रही हैं, मान्यताओं की रक्षा के नाम पर उन्हें किस प्रकार ध्वस्त किया जा रहा हैं, सिद्वान्त के नाम पर स्वार्थपरता की जिस प्रकार पराकाष्ठा हो रही है। सामाजिक न्याय के नाम पर जिस प्रकार अन्याय का बोलबाला हो रहा हैं, वह भारतीय इतिहास को तोड़–मरोड़ कर और दलगत जातिगत तथा सम्प्रदायगत विद्वेष को फैलाकर जिस प्रकार राष्ट्रीय एकता का पक्षधर बनाया जा रहा हैं, उससे यही प्रतीत होता है कि भारत माता स्वयं ही अपमानित हो रही हैं। यदि हम भारत को बचाना चाहते हैं तो भारत माता को खण्ड–खण्ड होने से भारतीय समाज को एकजुट करना होगा एवं नैतिकता की मर्यादा का पालन करना होगा। मान्यता हैं कि मूल्यों का संकट तब तक बना रहेगा जब तक मूल्यों की शिक्षा का दायित्व , शिक्षक वहन नहीं करते। शिक्षक कक्षा में अपना विषय पढाकर या किसी शीर्षक पर व्याख्यान देकर प्रायः अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते है।

शिक्षा को वृहद सामाजिक प्रणाली की एक उपप्रणाली मानकर वे सोच लेते है कि जहां तक जीवन मूल्यों का प्रश्न है उससे उनका कोई विशेष सरोकार नहीं है और ये मूल्य तो छात्र समाज से स्वयंमेव ग्रहण करते है। उनकी इस मान्यता में सत्य का अंश होते हुए भी यह देशहित में नहीं है। शिक्षको ने राजनीतिक नेताओं को भारतीय मूल्यों को रौंदते हुए देखा है और अब समय आ गया है कि छात्र और शिक्षक मिलकर मूल्य की रक्षा के अभियान में आगे आयें। युग परिवर्तन के साथ–साथ मूल्य बदलते रहते हैं। आज के वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी प्रधान युग में शिक्षा के प्रसार के बावजूद जीवन मूल्यों में ह्रास दिखाई दे रहा है। मूल्य आध ाारित जीवन शैली की जरूरत को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि विद्यालयों के मूल्यों के विकास हेतु विशिष्ट व संगठित प्रयत्न किये जायें। समय व काल की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए दार्शनिकों व अन्य विद्वानों ने विधिक प्रकार के मूल्यों को निश्चित किया है, तथा उन्हें वर्गीकृत करने का प्रयास किया हैं।

हमारे सामने जो दृश्य जगत है, जो सांसारिक प्रपंच है, उसमें ज्ञान का वास्तविक स्वरूप क्या है? मानवीय व्यवहार में अच्छा क्या हैं? बुरा क्या है? क्या स्वीकार्य तथा क्या त्याज्य है? ये प्रश्न मानव की जिज्ञासा तथा अन्वेषण के केन्द्र बिन्दु रहे है। इन प्रश्नों के सम्यक एवं सर्वमान्य उत्तर की खोज में मनुष्य कभी–कभी परस्पर विरोधी निष्कर्ष बिन्दुओं पर भी पहुंचा है, क्योंकि ये प्रश्न इतने जटित एवं दुरूह है कि अनन्त समय से मनुष्य इनकी गुत्थी सुलझाने के प्रयासों में अनवरत रूप से संलग्न है। जीवन और जगत की उत्पत्ति एवं प्रकृति, ज्ञान के वास्तविक स्वरूप तथा मूल्य विषय मौतिक प्रश्नों के सन्दर्भ में विभिन्न मान्यताओं और विश्वासों के ढांचें को ही सामान्य भाषा में दर्शन कहा जाता हैं।

वस्तुतः किसी भी वस्तु एवं व्यवहार में उसका मृल्य प्रतिबिम्बित होता है, होना भी चाहिए। यथा अग्नि के कार्य एवं व्यवहार में उष्णता तथा जल के कार्य एवं व्यवहार में शीतलता परिलक्षित होनी चाहिये और यदि यह गुण अथवा प्रभाव विशेष उत्पन्न नहीं होते है, तो इन्हें कमशः अग्नि और जल नहीं कहा जा सकता है। अर्थात अग्नि और जल के रूप में ये वस्तुयें मूल्यहीन है क्योंकि यह वस्तुएं अग्नि और जल है ही नहीं, अर्थात कोई वस्तु अपने यथार्थस्वरूप का बोध ा मूल्य के माध्यम से ही कराती है तथा धर्म से च्युत लक्षणों में यह वस्तु मूल्यहीन है। हीरे का धर्म है अभंजकता, अब यदि कोई वस्तु जिसे हीरा कहा जा रहा है, टूट जाये तो न तो वह वस्तु हीरा होगी और न ही हीरे के रूप में उसका मूल्य ही होगा। प्रकृतिवादी का विवेक सभी आत्मिक अन्तर्दृष्टियों को अवश्य प्राप्त कर सकता हैं, जिसमें अति प्रकृतिवाद मार्ग से अलग होकर उत्साहवर्धन करता है। अब्राहम ऐदिल ने अपने प्रकृतिवाद और मानवआत्मा शीर्षक अध याय में, जिसमें प्रकृतिवादी नैतिक लक्ष्यार्थ सिद्वान्त का वर्णन है, यह तर्क प्रस्तुत किया है कि चयन का काम उसके कारणों पर अधिक आधारित हो सकता है और इसी प्रकार चयन कार्य के ढंग के स्थान में भी उसको महत्व प्राप्त होता है, क्योंकि इससे सुख की प्राप्ति होती है। किसी व्यक्ति के कार्य से प्राप्त सुख की कसौटी यही है कि वह उसको वरीयता प्रदान करता है और उसके चयन में निरन्तरता रहती है। इस विश्लेषण से सुख की प्रकृति पर अत्याधिक

प्रकाश पड़ता है, जिससे स्पष्ट होता है कि सुख पर आधारित वरीयताओं से मूल्य के चयन निर्णीत होते हैं।

दर्शन का एक विचारणीय क्षेत्र मूल्यमीमांसा है। यदि हम इसके विषय में सोचना बन्द कर दे ंतो हममें से अधिकांश लोग यह मानेंगे कि एक क्षेत्र तो सत्ता का है और दूसरा क्षेत्र मूल्य का है। हमारे अनुभव इन वस्तुओं से संयुक्त मूल्य से बना हुआ होता हैं।

सामाजिक मूल्य के कुछ उदाहरण क्या है ? कुछ का उल्लेख किया जायेगा, उनमें से कुछ तो अति प्राचीन काल से मानव समाज द्वारा स्थिर किए गए है, और अन्य मूल्य हमारे पकड से बाहर हैं। (1) सामाजिक संरचना में व्यवस्था और अवलम्बन विद्यमान है और सभ्यता से पूर्व की अराजकता से यह श्रेष्ठ है। यह अराजकता आज भी युद्व के परिवर्तनशील भाग्य के माध्य में उस समय ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ती है, जिस समय एक ओर नियन्त्रण दूसरी ओर जाता है। (2) दूसरा उदाहरण है जनतंत्र को अथवा समाज के सामान्य कार्यो की दिशा निश्चित दिशा में आज्ञापालन से श्रेष्ठ मूल्य हैं। (3) और फिर संयुक्त मोर्चा का मूल्य है और इसके द्वारा प्रदत्त उस शक्ति का मूल्य है, जो भूख, गरीबी, अपराध, बीमारी, युद्व जैसे मानव कल्याण के शत्रुओं के विरूद्व लडने में दिखाई पडती हैं। (4) सामाजिक मूल्यों में चौथा मूल्य विश्व–शांति का है। विश्व के स्तर पर सामाजिक संरचना की व्यवस्था करना इसके अन्तर्गत है। यह मूल्य समस्त मानवता को समेट लेता है। इस मूल्य को अपनाने से हम प्रारम्भिक अराजकता की स्थिति में पुनः पहुंचने से बच सकते हैं।

वर्तमान परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश में जीवन मूल्यों में विचलन तथा अस्थिरता के परिणामस्वरूप मनुष्य आचरण हेतु दृढ मानदण्डीय आधार खो बैठा है तथा उसकी नियति उस पंगत की भांति हो गयी है, जिसकी डोर कट चुकी है। आस्था और विश्वास का स्थान तर्क ने ले लिया है, किन्तु जीवन मात्रा तर्क के आधार पर नहीं जिया जा सकता है। इसे तो किसी न किसी स्थिर आधार के प्रति विश्वस्त होना ही पड़ेगा।

♦♦♦♦♦

4

भारतीय समाज में नैतिकता एवं राजनीतिक प्रभाव

राम किशोर
शोधार्थी, अफ्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

किसी भी समाज की सर्वप्रथम आवश्यकता है मानव का सामाजिक प्राणी होने के नाते मानवीय आचरण, नैतिकता का अनुसरण, मनुष्य होकर मनुष्य जैसा व्यवहार, समाज द्वारा निध ार्रित मर्यादाओं का पालन, सबके साथ जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों के सुख–दुख में सहभागिता की पवित्र भावना, मिल–बांटकर खाने, न्याय और समानता की स्थापना के लिए अथक प्रयास करना। इनमें से प्रत्येक अपने आप में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ही नहीं अपितु यह मानव–मात्र के लिए उसके जीवन का पवित्र लक्ष्य भी है। धर्म, साहित्य, विविध कलाएं, सांस्कृ तिक प्रतीक, समस्त ज्ञान–विज्ञान, रीति–रिवाज, नैतिक मान्यताएं एवं कर्मकांड–ये सभी मनुष्य की सामाजिकता के शुद्धतम स्वरूप को बनाए रखने के चिरंतन प्रयास के खूबसूरत भाग के साथ–साथ मानव–जीवन की उत्कृष्टता के आकलन हेतु तय कसौटियां भी हैं।

सभ्यता की सुदीर्घ यात्रा में वह जैसे–जैसे प्रकृति के रहस्यों से परिचित होता गया, उसकी यह अवधारणा निरंतर सुदृढ़ होती गई कि मात्र अध्यात्म–चिंतन से लौकिक कल्याण असंभव है। केवल तात्विक ज्ञान से व्यावहारिक समस्याओं का हल संभव नहीं, क्योंकि तर्क की समाप्ति सामान्यताः किसी तर्क पर ही होती है। तर्क की विरामावस्था ने धर्म को जन्म दिया। इस तरह वह मनुष्य के बुद्धिकौशल की विरामावस्था एवं अल्पकालिक ठहराव था। ताकि वह अगले वौद्धिक उपक्रम की तैयारी कर सके। परन्तु हुआ विपरीत, स्वार्थी लोगों ने ठहराव को ही लक्ष्य मान लिया और उसी को सिद्धि बताने लगे। बाकी लोगों को भी उनकी बातों पर विश्वास करना पड़ा। इसलिए कि अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए तब तक उन्होंने संसाधनों पर अधि ाकार जमा लिया था और बाकी लोग अपनी आवश्यकताओं के लिए उनपर निर्भर थे। उन्होंने ऐसे नियम बनाए कि मेहनत और कर्मठ–कौशल के बल पर जीने वाला समूह उनके अधीन होता गया। इसके लिए सामाजिक नियमों को शक्तिशाली बनाया गया।

किसी समय राजनीति में नैतिकता के उच्च मानदंड स्थापित थे, परन्तु आज यह ऐसा बाजार है जहां नैतिकता व मूल्य जैसे उच्च आदर्श बिकाऊ हैं। राजनीति में राजनीतिक लाभ के लिए राजनेता किसी भी सीमा को लांघ जाते हैं। कहने के लिए तो राजनीति एक ऐसी विनम्र कला है जिसमें गरीबों से वोट और अमीरों से चंदा दोनों को ही एक–दूसरे से सुरक्षा दिलाने के वायदे पर लिया जाता है परन्तु चुनाव पश्चात प्रत्येक राजनीतिक दल सत्ता में आने एवं सत्ता में बने रहने के लिए जोड़–तोड़ की राजनीति करते हैं। इसके लिए यदि आवश्यकता पड़े तो

राजनीतिक दल अपनी विचारधारा, सिद्धांतो एवं अपने नैतिक मूल्यों से भी समझौता कर लेते हैं। चुनाव के आते ही हमारे नेता कलाबाज और मसीहा की तरह व्यवहार करने लगते हैं। आप यह कल्पना नहीं कर सकते लेकिन मामला कौआ चले हंस की चाल जैसा दिखता है।

आज राजनीति में आदर्शों एवं नैतिकता का अभाव है। अधिकांश नेताओं एवं दलों के चुनावी अभियानों में बहस के लिए बहुत कम स्थान बचा हुआ है। राष्ट्रीय महत्व के मुद्दे दांव पर नहीं हैं। किसी कार्यक्रम और नीति की चर्चा नहीं हो रही है और सब एक दूसरे को बुरा–भला कहते हुए दिखते हैं। न ही भ्रष्टाचार, शिक्षा और न ही बेरोजगारी किसी के लिए मसला है। राजनेता एवं दल किसी एक विचारधारा के आधार पर चुनाव जीतते हैं और सत्ता में बने रहने के लिए दूसरी विचारधारा को चुनते है इसमें भारत के मुख्यतः सभी राजनीतिक दलों को रखा जा सकता है। आज के संसदीय लोकतंत्र में गठबंधन सरकारें आम हैं। एक दल के बहुमत वाली सरकारें दुर्लभ होती जा रही हैं।

हमारे देश में यह चिंता का विषय है कि चुनाव बाद के गठबंधनों को पूर्व की तुलना में विशेष महत्व दिया जा रहा है। फ्रांस, दक्षिण कोरिया और भारत जैसे देशों में चुनाव पूर्व गठबंधन बेहद आम हैं। भारतीय अनुभव बताता है कि इस तरह का गठबंधन साझा सहमति के आधार पर बने कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सरकार नहीं बना पाता। चुनावों बाद स्थिति बदल जाती है। पद एवं अन्य लाभों की अपेक्षा में ये गठबंधन टूट जाता है। इस कारण सहयोगी घटक सरकार बनाने के लिए सहयोग नहीं करते और ये दल स्वतंत्र होकर चुनाव बाद के गठबंधन को प्राथमिकता देते हैं।

इस स्थिति के लिए सभी राजनीतिक दल उत्तरदायी हैं। चुनाव के दौरान दल–बदल लोकतंत्र के लिए बेहद खतरनाक है। अभी दलबदल विरोधी कानून केवल पाला बदलने वाले निर्वाचित प्रतिनिधियों पर लागू होता है लेकिन इसमें संशोधन का वक्त अब आ चुका है। उसमें यह अनिवार्य कर देना चाहिए कि दलबदल करने वाला कोई भी नेता संबंधित पार्टी में पांच साल काम करने के बाद ही टिकट पाने का हकदार होगा। इस मसले पर गांधी जी की प्रसिद्ध उक्ति है राजनेता सत्ता के खेल में शामिल होते हैं तो वे बिना किसी सिद्धांतों के व्यवहार करते हैं। किसी भी कीमत पर सत्ता में बने रहने का निश्चय अनैतिक है। जब राजनेता या कोई अन्य सत्य का साथ छोड़ देते हैं तो उनकी या दलों की साख धूमिल हो जाती है।

♦♦♦♦♦

5

समकालीन विश्व में नैतिकता और राजनीति का अनूठा संबंध

शिम्पी पांडे
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

समकालीन विश्व जगत में विभिन्न देशों में नैतिकता का विषय अहम है और नैतिकता और राजनीति का संबंध महत्वपूर्ण बन गया है विभिन्न देशों की राजनीति में राजनीतिक नैतिकता एक केंद्रीय विषय राजनीति और मूल्यों के संबंधों का विश्लेषण है एक देश की राजनीति, राजनीतिज्ञ, राजनीतिक दल, राजनीतिक व्यवस्थाओं, और संस्थाओं को नैतिक मानकों और सैद्धांतिक मूल्यों से अलग नहीं किया जा सकता। नैतिकता का शाब्दिक अर्थ वह मूल्य अथवा मानक है जो क्या किया जाना चाहिए अथवा क्या होना चाहिए से संबंधित है। इनके संबंध के विषय में यह तर्क दिया जाता है कि इसका निर्धारण किस प्रकार किया जाए कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक है, यह भी विवाद और विचार–विमर्श का का विषय है कि किन मानकों के आधार पर नैतिकता का निर्धारण किया जाए। यद्यपि समस्या यह भी है कि कई बार नैतिकता की अवधारणा व्यक्तिगत स्तर पर भी निर्भर करती है। ऐसा संभव है कि एक कार्य एक व्यक्ति के लिए नैतिक हो सकता है किंतु वही कार्य दूसरे व्यक्ति के लिए अनैतिक हो सकता है। अतः नैतिकता के पैमाने का निर्धारण करना एक कठिन कार्य है। नैतिक रूप से क्या उचित है और क्या अनुचित है उसके मूल्यांकन के लिए एक व्यापक पैमाना होना चाहिए जिससे वह विशिष्ट कृत्य अथवा विचार अधिकतर व्यक्तियों पर सकारात्मक प्रभाव डाले। नैतिकता मूल्यपरक विषय है अतः इसे विधिक रूप प्रदान करना एक जटिल कार्य है।

मानव जीवन के सभी पहलुओं में नैतिकता का प्रश्न सदैव विद्यमान रहता है, किंतु राजनीति में प्रवेश करने के उपरांत उसकी प्रकृति में परिवर्तन आता है। नैतिकता एवं मूल्य को न्यायोचित सिद्ध करना एक जटिल कार्य है किंतु यह कहना गलत नहीं होगा कि इससे विकास प्रक्रिया को मूल्यपरक बनाने में सहायता मिलती है। नैतिकता के सिद्धांतों की स्वीकृति आवश्यक है तभी उसे अपनाया जा सकता है। मानव व्यवहार की अपेक्षा राजनीति का क्षेत्र भिन्न प्रकार का होता है, अतः नैतिकता के स्वरुप में भी परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिए राजनीति में नैतिकता को इस प्रकार से देख सकते हैं कि राजनीतिज्ञ को अपनी शैली में मूल्यों का समावेश किया जाना चाहिए। सभी व्यक्तियों, महिलाओं, जीव–जन्तुओं के विषय में सरकार को नैतिक जिम्मेदारी लेनी चाहिए। जिसके द्वारा उनके लिए कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण किया जाए और उनका हितवर्धन किया जाए। राज्य में अपराध को रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए, शांति–व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। व्यक्ति को परिवार व समाज के प्रति जिम्मेदारी के साथ–साथ राज्य और सरकार के प्रति भी जिम्मेदारी का निर्वहन

किया जाना चाहिए। अपने कर्तव्यों और दायित्यों का पालन निष्ठा के साथ किया जाना चाहिए। राज्य में सरकार को ऐसी नीतियों का निर्माण करना चाहिए जो नैतिक और मौलिक हों।

नैतिकता का पतन होने से भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, दुराचार, कुशासन, एवं विभिन्न समस्याएं उत्पन्न होती हैं। नैतिकता विभिन्न मूल्यों जैसे सत्य, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, न्याय, समर्पण, निष्ठा और दृढ़–निश्चय इत्यादि गुणों का समावेशी रूप है। नैतिकता की आवश्यकता निजी जीवन के साथ ही सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर भी होती है। निजी जीवन में नैतिकता के गुण अनिवार्य हैं जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं ठीक उसी प्रकार राजनीति में भी यह महत्वपूर्ण है। यदि राजनीतिक स्तर पर नैतिकता की बात की जाये तो स्पष्ट है कि इसके अंतर्गत न्याय, बुद्धिमता, कानून, दायित्व, कर्तव्य इत्यादि सम्मिलित होंगे। राजनीति में नैतिक मूल्यों का समावेश राज्य में शांति व्यवस्था स्थापित करने में सहायक होते हैं। राजनीतिक मूल्यों के विकास में नैतिकता के समागम ने महिलाओं के अधिकार, पर्यावर्णीय मुद्दों, बाल अधिकारों आदि को महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभारा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ, मानव अधिकार, गैर सरकारी सगठन आदि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नैतिक मूल्यों की स्थापना का कार्य करते हैं। अतः यह कहना उचित है कि नैतिकता राजनीति को मूल्यपरक बनाती है। वर्तमान में राजनीति में नैतिकता आवश्यक है एवं अनिवार्य भी है क्योंकि नैतिक मूल्य राजनीति को सकारात्मक लक्षण प्रदान करते हैं। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि राजनीति व्यक्ति के स्वभाव को विकृत करती है जिससे वह अपने पद का दुरुपयोग करता है और भ्रष्टाचार की ओर उन्मुख होता है। यद्यपि राजनीति को एक गंदे खेल के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। ऐसे में नैतिकता व्यक्ति को सद्मार्ग की ओर ले जाती है।

यदि राजनीतिज्ञों की नैतिकता की बात की जाए तो उनका नैतिक चरित्र अहम है। राजनीतिज्ञों को स्वार्थसिद्धि और लाभ को छोड़कर राज्य और समाज के कल्याण हेतु कार्य करना चाहिए। चुनावों के दौरान अधिकांशतः देखा गया है कि विभिन्न राजनीतिज्ञ चुनावों में सत्ता के लोभ में एक दल को छोड़कर दूसरे दल में शामिल हो जाते हैं, जो नैतिक रूप से सही नहीं है। राजनीतिज्ञ यदि नैतिक मूल्यों को अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में ग्रहण कर लें तो सरकार की कार्यशैली में सकारात्मक परिवर्तन अवश्य आएगा। राजनीतिज्ञ जनता के प्रतिनिधि होते हैं यदि वह नैतिक मूल्यों के आधार पर नीतियों का अनुसरण करेंगे तो इससे समाज का हित होगा और इससे सरकार जनता की समस्याओं के समाधान में सहायता प्राप्त होगी।

यद्यपि समकालीन जगत में राजनीति में मीडिया की भूमिका अहम है अतः मीडिया के क्षेत्र में नैतिक मूल्य महत्वपूर्ण हैं। मीडिया के विभिन्न माध्यम जैसे अखबार, टेलीवीजन, इंटरनेट इत्यादि का कर्तव्य है कि वह आम जनता तक सच्चाई को प्रस्तुत करें व कर्तव्यों और दायित्वों का भली प्रकार अनुसरण करें। मीडिया यदि अपने नैतिक दायित्वों का भली प्रकार से पालन करे तो समाज में अपनी भूमिका का निर्वहन करने में सफल रहेगा। मीडिया चुनावों के दौरान

निष्पक्षता से राजनीतिक दलों की वास्तविकता को आम जनता तक पहुंचाये तो चुनाव की प्रक्रिया में उसकी भूमिका सकारात्मक होगी।

हाल के वर्षों में नैतिकता और राजनीति का विषय महत्वपूर्ण हो गया। विश्व पटल पर राजनीति में नैतिक मूल्यों का महत्व पहले से अधिक बढ़ गया है। राजनीतिज्ञों की भाषाशैली यदि नैतिक मानकों के आधार पर होती है तो वह जनता के लिए लाभदायक होता है। हालांकि नैतिकता और राजनीति के संबंध का विषय बहुत विवादास्पद है किंतु फिर भी इसकी प्रासंगिकता निरंतरता बनी रहती है। राजनीति में नैतिकता चिंता का विषय बन गया है जिसका निराकरण किया जाना चाहिए।

♦♦♦♦♦

6

नैतिकता की राजनीति– एक लैंगिक परिप्रेक्ष्य

रजनी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

''मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है, परंतु बेड़ियों में जकड़ा है'' यह कथन कही न कही सत्य प्रतीत होता है जहां नैतिकता में राजनीति का समावेश है। नैतिकता की राजनीति से आशय आपके लिए एक पैमाना तय कर देने से है, जहां आपको बताया जाता है कि आपको कैसे जीवन व्यतीत करना है आपका व्यक्तित्व राज्य के नियमो पर निर्भर करता है जहां आप स्वयं को सिर्फ आईने के सामने स्वतंत्र अनुभव कर सकते है परंतु वास्तविकता में आप राजनीति की बेड़ियों में जकड़े हुए है, और यदि वास्तविक नैतिकता को देखा जाए तो उसका तात्पर्य मापदण्ड और मूल्यो से है जिनका प्रयोग केवल व्यक्तिगत जीवन के लिए किया जाना चाहिए न कि जीवन के सामाजिक पहलुओ के लिए। नैतिकता की राजनीति को हर मोड़, हर क्षेत्र में देखा जा सकता है, जिसका सबसे अधिक प्रभाव लैंगिकता पर पड़ता है या यों कहिए कि लैंगिकता को इस नैतिकता की राजनीति के पैमाने से नापकर अन्य चीजो का स्थान तय किया जाता है। फिर चाहे वे घरेलू कार्य हो या नौकरी, स्त्री–पुरूष का पहनावा हो, या बोलचाल व तौर तरीको का रहन सहन यहां तक की टेलीविजन पर प्रस्तुत किये जाने वाले विज्ञापनो, इत्यादि प्रकार के अन्य भी कार्य है जहां लैंगिकता में नैतिकता का समावेश शुरू से ही देखा जाता रहा है। जहां महिलाओं के लिए घर के कार्य और यदि वह नौकरी करती है तो कम वेतन या उनका सामाजिक और मानसिक या वह हर प्रकार का शोषण जो उन्हे प्रगति में पीछे ध ाकेलने का प्रयास करता है।

प्राचीन काल व नैतिकता की राजनीति– नैतिकता की राजनीति को प्राचीन समय मे समझने के लिए प्राचीन समय के साहित्यों का अध्ययन किया जाए तो मनुस्मृति, अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथ लैंगिक विभाजन को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हुए देखे जा सकते है। जहां स्त्रियों और पुरूषो के लिए हर क्षेत्र में सीमाएं बना दी गई है जिसमें स्त्री को सीमा के अन्दर व पुरूष को सीमा के बाहर देखा गया है। और इस सीमा को जिस दर्शन से बताया गया है वह नैतिकता की राजनीति का दर्शन है जिसको एक सिद्धांत के रूप में आज तक मान्यता प्राप्त है। यहां से ही नैतिकता की राजनीति का प्रारंभ कहा जा सकता है, क्योंकि लैंगिकता का विभाजन या पितृसत्ता का जन्म यही से देखने को मिलता है।

व्यक्तिगत और सामाजिक रूप में सैद्धांतिक दृष्टिकोण– नैतिकता का व्यक्तिगत होना ज्यादा

ठीक लगता है बजाए उसके सामाजिक होने के और जब यह नैतिकता, सामाजिक होने का रूप ग्रहण करवाने का प्रयास किया जाता है तो वह एक राजनीति का भाग होता है जहां कुछ लोगो के विचारों को सभी पर थोंपने का प्रयास किया जाता है जिसे आज भी होता हुआ देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप स्त्री और पुरूषों के रहन सहन और वस्त्र हरण में जहां जमीं–आसमां का अतंर देखने को मिलता है जिसे स्पष्ट करते हुए कंचन माथुर, मिनाक्षी थापन, सिमोन द बोउवार, निवेदिता मेनन, सेजल, उमा चकवती, सुरंजिता रे, कुमकुम रॉय इत्यादि लेखको के माध्यम से नैतिकता कि राजनीति को समझाते हुए पितृसत्ता और उसके बनाए जाल को बताने का प्रयास किया है।

इन लेखकों का मानना है कि दमनकारी प्रथा और तौर तरीके, परंपराए महिलाओं को अधीन करने में या 'जननांगो की कांट–छांट करने' में सहायक होते है तथा इन्हें समाप्त करना जब तक संभव नही हो सकता जब तक कि ऐसी प्रथाओं को बढ़ावा देने वाली संरचना और सामाजिक संबंधो को चुनौती नहीं दी जाती या उन्हे स्वीकार करने से मना नहीं किया जा सकता। इसमें एक पौरूषपूर्ण विचार जिसमें पुरूष पात्रों को ही प्राथमिकता प्राप्त होती है और स्त्रियों को हाशिये पर या अधीन रखा जाता है। यही प्रथा आज के दौर में भी प्रचलित है जहां स्त्री और पुरूष में आज भी भेदभाव किया जाता है क्योंकि समाज के कुछ लोगो द्वारा बनाई गई नैतिकता को राजनीति ने पूर्ण रूप से पी लिया है जहां उस पवित्र नैतिकता का घड़ा खाली हो चला है और समकालीन समय में नैतिकता और राजनीति को अरस्तू की तरह अलग करना संभव नहीं है, क्योंकि आज जिस शब्द ''आधुनिकता'' का ढ़िंढोरा लोगो द्वारा प्रयोग किया जा रहा है, उसी आधुनिकता के चोले के पीछे राजनीति का रूप भी छिपा है जहां नैतिकता के नाम पर मानवता को ठगा जा रहा है या यों कहे कि उनका हनन किया जा रहा है विशेष रूप से ''स्वतंत्रता'' का।

नैतिकता कि राजनीति और आधुनिकता– प्राचीन काल मे वेदो के साहित्यों का अध्ययन किया जाये तो न वहां आज की तरह राजनीति दिखाई पड़ती और न ही नैतिकता। परंतु आज आध ुनिकता के नाम पर जिस नैतिकता का जन्म हुआ है वह नैतिकता उसी प्रकार की नैतिकता है जिस प्रकार प्लेटो के साम्यवाद जो सभी पर लागू नहीं होता था परतुं यहां यह सिद्धांत जिन लोगो पर लागू नहीं होता वह प्लेटो के काल के समान दार्शनिक नहीं क्योंकि उस काल में यह सिद्धांत जिन के लिए बनाया गया था उनको राज्य की विकास के लिए मोह से दूर करने के लिए सोचा गया था जिसे आज के समय में विपरित रूप में देखा जा रहा है। क्योंकि आज जिस प्रकर कि नैतिकता का निर्माण किया है वह इसका निर्माण करने वालो के लाभ को देखकर बनाया जा रहा है। जहां नित्से भी स्पष्ट करते हुए बताते है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा, सही–गलत, गुण–दोष, न्याय और जुर्म इन दोनो के स्तर को कुछ ही लोगो द्वारा तय किया जाता है जहां जो उनके लिए अच्छा है तो वह अच्छे की श्रेणी में और जो बुरा है वह बुरे की श्रेणी में। इस अच्छे–बुरे की श्रेणी में यदि मानव को देखा जाए तो इन श्रेणीयों में स्त्री और पुरूष दोनो को अलग श्रेणी प्रदान की गई।

आधुनिक काल में स्त्री और पुरूष के चित्रण को नकारात्मक प्रारूप प्रदान किया गया है जहां होते बलात्कार, यौन शोषण इत्यादि नकारात्मक प्रवृत्तियों के लिए महिलाओं को दोषी करार दिया जाता है जहां अहम भूमिका का श्रेय उनके पहनावे, उनके चरित्र, उनके व्यवहार, बोल–चाल और एक प्रदान की गई साविधानिक स्वतंत्रता जिसके ।तज.19 में प्रदान किया गया है को माना जाता है। परतुं पुरूषो की नैतिकता का क्या? समाज में इस नैतिकता की राजनीति में जो भी नियम लागू किये गए है उनको उन पुरूषो पर पूर्ण रूप से क्यों लागू नहीं किया जा जाता जो ऐसी घटनाओं को अंजाम देते है। और महिलाओं के प्रति जो दृष्टिकोण बनाए गए है उसे क्या उन नाबालिक बच्चियों पर भी लागू किया जाएगा जो इस प्रकार कि घटनाओं की शिकार होती आ रही है। फिर भले ही वह कठुआ में हुआ गैंगरेप हो या बागपत, मुजफ्फर नगर, दिल्ली जैसे राज्यों में होने वाली घटना। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस प्रकार की नैतिकता की मानसिकता को परिवर्तित करने के लिए दमन करने वाली संस्थाओं की जड़ को पकड़ना आवश्यक है जिस प्रकार फूको कहते है कि एक ऐसा इतिहास लिखा जाए जिसमें कामुक टैबुओं का वर्णन हो। यह इतिहास ही हमें बताएगा कि हमारा समाज किस तरह निरंतर विभिन्न किस्म के दमनात्मक रूपों से गुजरता रहा है। इस इतिहास में हमें नैतिकता और दमन के कमवार विवरण को नहीं जानना है, अपितु यह जानना है कि हमारी इच्छाओं का सुखद संसार कैसे पश्चिमी और नैतिक मूल्यों के उदय में बदल गया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आज का समाज नैतिकता की राजनीति में फंसा हुआ है जिसने नैतिकता की जड़ो को खोखला करना शुरू कर दिया है। जहां गुड स्वयं को अर्थात अच्छे को नैतिकता की श्रेणी में रखता है जिसे शक्तिशाली लोगो द्वारा तैयार किया जाता है और यही शक्तिशाली लोग जैसे की पितृसत्तात्मक ढ़ाचा स्वयं से नीचे के लोगो को कमजोर व इविल की संज्ञा देते है। और इसी ढाचें के चलते आधुनिक समाज में समझने ओर समझाने के तरीको में परिवर्तन अत्यधिक नकारात्मक प्रारूप में सामने आया है जिसे परिवर्तन की अतिआवश्यकता है।

वहीं इस बात को भी समझने की आवश्यकता है कि कुछ लोगो द्वारा कैसे पूरे समाज के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा का निर्णय किया जा सकता है। कैसे इस प्रकार भेदभाव की नैतिकता को नियम के रूप में परिवर्तित करके मानवता पर थोपा जाता है। क्यों जे.एस.मिल, ली बोलिंगर, जैसे लेखको के उन सिद्धांतो को मान्यता नहीं दी सकती जहां वह कहते है कि सभी को एक समान सुनने और कहने का अधिकार होना चाहिए और ऐसा व्यवहारिक भी होना चाहिए। ताकि नैतिकता की राजनीति से बचकर नैतिकता की ओर प्रस्थान किया जा सके जिसमें समाज के सभी लोगो को एक बराबरी का स्तर प्रदान हो साथ ही लैंगिकता को देखने का दृष्टिकोण परिवर्तित होकर सिर्फ मानवता के दृष्टिकोण से देखने की ओर अग्रसर होने का प्रयास होना चाहिए।

♦♦♦♦♦

7

राजनीति और नैतिकताः नारीवादी दृष्टिकोण

मेघा
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जब भी नैतिकता के सम्बन्ध में तर्क–वितर्क होता है तो नैतिकता को अमूर्त रूप में समझा जाता है, नैतिकता का स्वरुप वैश्विक और सन्दर्भविहीन और वस्तुनिष्ठ माना जाता है। यदि राजनीति के सम्बन्ध में बात की जाये तो नैतिकता का ये स्वरुप अधिक प्रखर हो जाता है। समकालीन सदर्भ में यह कहा जाता है कि राजनीति में नैतिकता की अपेक्षा व्यर्थ है और कहीं न कहीं दोनों संकल्पनाए एक दूसरे के विपरीत हैं। परन्तु यह कहना कहीं न कहीं अतिश्योक्ति है। यदि हम राजनीयिक चिंतन के पन्नो को सहलायें तो हम जान पाएंगे की नैतिकता और राजनीति दोनों में बहुत गहरा सम्बन्ध है। अरस्तु, प्लेटो जिस राजा के द्वारा राज्य व राजनीति को चलाने की बात करते हैं वह आदर्श राजा है। मैक्यावली घरेलु व बाह्य स्तर पर भिन्न नैतिकता की बात करता है। कौटिल्य भी कहीं न कहीं राज्य व राजनीति की नैतिक सीमा को निश्चित करता है जोकि पुनः राज्य की सीमा के भीतर व सीमा के बाहर भिन्न नैतिकता के विचार को रखता है। इस प्रकार राजनीति व नैतिकता के सम्बन्ध को राज्य व राजा के सम्बन्ध में चरित्रार्थ करने का कार्य प्राचीन समय से होता रहा है जिसे कभी भी नारीवादी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास नहीं किया गया है।

राजनीति व नैतिकता के बीच सम्बन्ध के बारे में बात करते समय यह जानना ज़रूरी है कि राजनीति एक बाह्य क्षेत्र की क्रिया है यह निजी क्षेत्र से सम्बंधित नहीं है क्योंकि राजनीति पुरुषत्व द्वारा स्थापित निजी व सार्वजनिक विरोधाभास के ऊपर काम करती है जिससे महिलाएं बाहर हैं। प्लेटो, अरस्तू, कौटिल्य जिस आदर्श व दार्शनिक राजा / राज्य की बात करते हैं वह असन्निहित **(disembedded)** व विरोपित / विप्रतिष्ठापित **(disembodied)** है क्योंकि पुरुषत्व का गुण है की वह नैतिकता, मूल्यों व संबंधों से स्वयं को अलग कर सकता है। परन्तु महिलाएं सन्निहित व प्रतिष्ठापित हैं क्योंकि नारीत्व का गुण है की वह नैतिकता , मूल्यों और संबंधों से अलग नहीं हो सकती। इस विचार को सत्यता के रूप में स्थापित और पुनर्स्थापित किया गया है और यह कार्य स्वयं राज्य के द्वारा किया गया है।

यहाँ मुख्य बात यह है की राज्य स्वयं को कभी नैतिकता से अलग करने का दावा नहीं करता बल्कि उसने नैतिकता का राजनीतिकरण कर दिया है। अर्थात पुरुष प्रधान या पौरुष राज्य ने नैतिकता का प्रयोग अपने हितों की पूर्ति के लिए किया है। राज्य नैतिकता को साधन के रूप में लेकर सत्ता व शक्ति के साध्य को प्राप्त करने की परियोजना में लिप्त है, इस तरह

पितृसतात्मक राज्य नैतिकता को राजनीति से सम्बंधित नहीं करता न ही नैतिकता को राजनीति में समाहित करता है बल्कि अपने हितों को पूरा करने के लिए उन्हें नैतिकता से आवृत करता है। जैसे पश्चिमी राज्य कुछ वैश्विक नैतिक सिद्धांतों जैसे मानव अधिकार, सुशासन इत्यादि के नाम पर तीसरे विश्व के राज्यों में हस्तक्षेप करने के अपने हित की पूर्ति करते हैं। इसी प्रकार राज्य महिलाओं को यौनिक नैतिकता के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजीत करता है जैसे अच्छे चरित्र की महिलाएं व खराब चरित्र की महिलाएं। अच्छे चरित्र की महिलाएं हैं माँ, बहन, बेटी व पत्नी और बुरे चरित्र की महिलाएं हैं जैसे वेश्या। इसी विभाजन के आधार पर राज्य अपने सुरक्षा के दायरे को सीमित करता है। माँ, बहन, बेटी व पत्नी की यौनिकता की सुरक्षा का दायित्व राज्य वहन करने को तैयार है।

इसलिए जब इनका बलात्कार होता है तो राज्य इनकी और से लड़ता है। परन्तु वैश्या की यौनिकता की सुरक्षा के दायित्व से राज्य अपने को बाहर करता है। वैश्या का बलात्कार, बलात्कार नहीं माना जाता क्योंकि उसकी यौनिकता पर सभी पुरुषों का अधिकार माना जाता है। ये महिलाएं यौनिक नैतिकता के दायरे से बाहर हैं इसलिए राज्य की सुरक्षा के दायरे से भी बाहर हैं। इस प्रकार राज्य नैतिकता का प्रयोग एक साधन के रूप में एक पितृसतात्मक राज्य को निर्मित व पुनर्निर्मित करने के लिए भी करता है।

राज्य नैतिकता को संस्थागत बनाने का प्रयास भी करता है व इस संस्थानीकरण के द्वारा प्राधान्य पुरुषत्व को पुष्ट भी करता है। इसका सबसे सराहनीय उदाहरण परिवार को एक नैतिक संस्था के रूप में पुष्ट करना है। इस संस्था में महिलायों को नैतिकता के साथ बांधकर उनका शोषण स्थापित व पुनर्स्थापित किया जाता है। वैवाहिक बलात्कार को बलात्कार की श्रेणी से बाहर रखने का सबसे प्रमुख कारण परिवार जैसी संस्था की नैतिकता को बनाये रखना है। पत्नी व पति के बीच यौन सम्बन्ध को निजी नैतिकता का अंश मानकर उसमे राज्य व राजनीति के अतिक्रमण को रोकने के नाम पर विवाहित महिलायों पर हो रहे यौन अत्याचार की उपेक्षा की जा रही है व इसे कहीं न कहीं प्रासंगिक बनाया जा रहा है।

यहाँ यह समझना ज़रूरी है की एक तरह से देखा जाये तो राज्य बाह्य व निजी दोनों स्तरों पर नैतिकता को परिभाषित करता है और अपने द्वारा परिभाषित अर्थ का सामानियाकरण करता है. नैतिकता सान्दर्भिक हो सकती है व निजी जीवन और उनके अनुभवों से सम्बंधित होती है इसे राज्य नहीं मानता .वहीं महिलाएं अंतर्वयाक्तिक मौलिकता में समाहित होती हैं अर्थात वह मूल्यों, व्यवहारों, अनुभवों व दूसरे के हितों से अलग करके खुद को नहीं देख पातीं। यह गुण उसे अपकृष्ट नहीं बनाता बल्कि उसे पुरुषों से भिन्न बनाता है।

राज्य को ऐसी नैतिकता को अपनाने पर बल देना चाहिए जो सम्मिलित का भाव रखती है। यह तभी संभव है जब नैतिकता सान्दर्भिक हो। राजनीति और नैतिकता का सम्बन्ध आवश्यक है ताकि राज्य सबको सम्मिलित करे व सबका मानवता के आधार पर सम्मान करे। यह तभी संभव

है जब नारीवादी नारे निजी राजनीतिक है को आधार बनाया जाए जो संदर्भो की महत्ता को दर्शाता है। आवश्यकता इस बात की है की नैतिकता व राजनीति के सम्बन्ध को नारीत्व के परिप्रेक्ष्य से देखा जाये जहाँ राजनीति को एक विशिष्ट विषय या प्रक्रिया के रूप में स्थापित न करके उसको नैतिकता, मूल्यों, विश्वासों, व्यवहारों के साथ संबंध करके देखा जाये ताकि राजनीति का स्वरुप मानवीय हो सके।

♦♦♦♦♦

8

संवैधानिक नैतिकता

अलिशा ढिंगरा
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

संविधान न केवल एक कानूनी दस्तावेज है, जो स्वयं में नैतिक दृष्टि रखता है। इस दृष्टि को संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा में न्यायाधीशों और विद्वानों द्वारा घनीभूत किया गया है। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि अम्बेडकर का मानना है कि संवैधानिक नैतिकता भारत में लोकतंत्र के लिए एक अनिवार्य शर्त है। उनके एक लेख में, अम्बेडकर लोकतंत्र के अस्तित्व के लिए सात पूर्व शर्तों को सूचीबद्ध किया हैः समाज असमानताओं और उत्पीड़न से मुक्त होना चाहिए; विपक्ष का अस्तित्वः कानून और प्रशासन में समानता और संवैधानिक नैतिकता का पालन; बहुमत की अत्याचार की अनुपस्थिति; समाज में नैतिक आदेश; सार्वजनिक विवेक। संविधान सभा में प्रारूप संविधान को प्रस्तुत करते समय डॉ अम्बेडकर ने ग्रीस के इतिहासकार जार्ज ग्रोटे को उद्धृत किया, जिन्होंने कहा थाः

संवैधानिक नैतिकता का प्रसार, न केवल किसी भी समुदाय के बहुमत के बीच, बल्कि पूरी तरह से एक बार स्वतंत्र और शांतिपूर्ण सरकार की एक अनिवार्य शर्त है, क्योंकि यहां तक कि कोई भी शक्तिशाली और कठोर अल्पसंख्यक एक मुक्त संस्थान के काम के बिना अव्यवहारिक हो सकता है खुद के लिए चढ़ाई जीतने के लिए पर्याप्त मजबूत है। "

जार्ज ग्रोटे को उद्धृत करने के बाद, डॉ अम्बेडकर ने कहाः

'सवाल यह है कि क्या हम संवैधानिक नैतिकता के इस तरह के प्रसार को मान सकते हैं? संवैधानिक नैतिकता एक प्राकृतिक भावना नहीं है। इसे जागृत करना होगा हमें महसूस करना होगा कि हमारे लोगों ने अभी तक इसे सीखा नहीं है। भारत में लोकतंत्र केवल भारतीय मिट्टी पर एक शीर्ष ड्रेसिंग है जो अनिवार्य रूप से गैर–लोकतांत्रिक है'।

कन्नबीरन (2012) बताती हैं कि हमें "संवैधानिक व्याख्या के नैतिकता" और "संवैधानिक नैतिकता के अम्बेडकरिट फॉर्मूलेशन" के बीच अंतर को समझने की आवश्यकता है। कन्नबीरन का तर्क है कि संविधान में उन समुदायों द्वारा संवैधानिक नैतिकता की उपमहाद्वीप व्याख्या की संभावना है जो ऐतिहासिक अन्याय का सामना करते हैं, और उनके समर्थकों द्वारा व्याख्याएं जो संवैधानिक नैतिकता की आदत को कम कर सकती हैं। संवैधानिक नैतिकता के कन्नबीरन की अवधारणा कुछ हद तक संवैधानिक विद्रोह की धारणा से जुड़ी हुई है। दूसरी तरफ,

अनुपमा रॉय (2013) और प्रताप भानु मेहता (2010) जैसे विद्वान संवैधानिक विद्रोह और संवैधानिक नैतिकता के बीच स्पष्ट अंतर खींचते हैं। प्रताप भानु मेहता का तर्क है कि संवैधानिक नैतिकता की धारणा संविधान की पवित्रता के आधार पर है। रॉय का तर्क है कि संवैधानिक विद्रोह की संभावना, जो कि संस्थापक क्षण के विरोधाभास में मौजूद है, उसका संवैधानिक नैतिकता और स्थायित्व की चिंता से सामना किया जाता है।

सुप्रीम कोर्ट के हाल के कुछ निर्णयों में, लोकप्रिय नैतिकता / सामाजिक नैतिकता और दूसरी ओर संवैधानिक नैतिकता के बीच एक अंतर किया गया है। यह जोर दिया गया है कि न्यायपालिका की ज़िम्मेदारी संवैधानिक नैतिकता के आधार पर तय करना चाहिए, भले ही इसमें सामाजिक नैतिकता की अस्वीकृति हो, जिसने पिछले वर्षों में सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न निर्णयों को निर्देशित किया है।

हाल के फैसले ,नवतेज सिंह जौहर बनाम भारतीय संघ मंत्रालय सितंबर 2018 के मुताबिक, इस बात पर जोर दिया गया कि सुरेश कौशल (2013) में दो न्यायाधीश बेंच को सामाजिक नैतिकता की प्रमुखतावादी धारणा पर झुकाव था जबकि वास्तविकता में यह मुद्दा संवैधानिक नैतिकता की पृष्ठभूमि में बहस करने की जरूरत है।

नवतेज सिंह के फैसले में मुद्दा भारतीय दंड संहिता की धारा 377 की संवैधानिकता का आकलन करना था। मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने समाज के निर्माण के लिए 'परिवर्तनीय संविधानवाद ' के विचार को प्रचारित किया जो सभी लोगों के लिए अवसर की समानता को बढ़ावा देता है। न्यायाधीश चंद्रचुण ने स्पष्ट रूप से कहा कि गैर –अपराधीकरण केवल पहला कदम है और एलजीबीटी नागरिक किसी भी अन्य नागरिक के लिए उपलब्ध सभी अधिकारों के हकदार हैं। इस फैसले ने न केवल संवैधानिक नैतिकता के प्रति प्रतिबद्धता घोषित की बल्कि संवैधानिक नैतिकता की धारणा को विस्तारित करने का भी प्रयास किया। इस बात पर जोर दिया गया कि "संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा संवैधानिकता के मूल सिद्धांतों के केवल पालन तक ही सीमित नहीं है क्योंकि संवैधानिक नैतिकता की परिमाण और स्वीप प्रावधानों और शाब्दिक पाठ तक सीमित नहीं है, जिसमें संविधान शामिल है, बल्कि यह स्वयं के भीतर सम्मेहित करता है एक व्यापक परिमाण के गुण जैसे कि बहुलवादी और समावेशी समाज का उपयोग करने के साथ–साथ संवैधानिकता के अन्य सिद्धांतों का पालन करना यह संवैधानिक नैतिकता को जोड़ने का नतीजा है कि संवैधानिकता के मूल्य राज्य के प्रत्येक नागरिक के सुधार के लिए राज्य के तंत्र के माध्यम से पहुँचते हैं। "

सबरीमाला मंदिर में 10–50 साल की उम्र के महिलाओं के प्रवेश के संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण फैसले में, महिलाओं को मंदिर में प्रवेश देने के लिए संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा पर बल दिया। 28 सितंबर, 2018 को केरल राज्य बनाम इंडियन यंग वकील एसोसिएशन के फैसले में न्यायपालिकाने कहा कि:"संविधान के अनुच्छेद 25 (1) में होने वाली

नैतिकता शब्द को संकीर्ण लेंस के साथ नहीं देखा जा सकता है ताकि नैतिकता की परिभाषा के क्षेत्र को किसी व्यक्ति , वर्ग या धार्मिक संप्रदाय के अर्थ के अनुसार सीमित न किया जाये" . हमें याद रखना चाहिए कि जब मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो शब्द "नैतिकता" स्वाभाविक रूप से संवैधानिक नैतिकता का तात्पर्य है और अंततः संवैधानिक न्यायालयों द्वारा लिया गया कोई भी विचार संविधान के बुनियादी सिद्धाँतों में परिलिक्षित संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा के अनुरूप होना चाहिए ".

एक अन्य हालिया फैसले में, 27 सितंबर, 2018 को जोसेफ शाइन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया ने सर्वसम्मति से भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) धारा 4 9 7 पर हमला किया, सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "एक महिला के विवाह में प्रवेश के बाद उसकी यौन स्वायत्तता को कम करना या सहमति की कमी पूर्व अनुमानित करना संवैधानिक मूल्यों के प्रति विरोधी है। " यह कहकर कि धारा 497 ने एक महिला को अपनी गोपनीयता से भी वंचित किया है, न्यायपालिका ने कहा की समाज के पास है पुरुषों और महिलाओं की नैतिकता का निर्धारण करने के मानकों के दो सेट हैं । धारा 497 लिंग पक्षपातपूर्ण है और भागीदारों को असमान आवाज देता है।

इस प्रकार हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि न्यायपालिका ने समाज के वंचित और भेदभाव वाले वर्गों को न्याय सुनिश्चित करने के मापक के रूप में संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा को अपनाया है।

♦♦♦♦♦

9

राजनीतिक आचार और नैतिकताः एक द्वंदात्मक सम्बन्ध

पवन कुमार
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

आचार (एथिक्स) का तात्पर्य है नैतिकता का विज्ञान, उचित आचरण का अध्ययन। वहीँ दूसरी ओर राजनीति का अर्थ है शासन अथवा राज्य का विज्ञान। अतः आचार तथा राजनीति दोनों ही मानव आचरण का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार राजनीतिक आचार का अर्थ है राजनीतिक नैतिकता या दूसरे शब्दों में नैतिक मूल्यों का राजनीति में प्रयोग इसका तात्पर्य है राजनीति में सही आचरण की जांच लेकिन क्या इसका मतलब है राजनीति में जो 'सही' है वो 'नैतिक' भी हो ? क्या हम 'राजनीति की नैतिकता' के बारे में बात कर सकते हैं? साथ ही क्या हम उन मानकों का उपयोग राजनीतिक कार्यों की न्यायसंगतता के परिक्षण हेतु कर सकते हैं जिनका हम अपने व्यक्तिगत जीवन में उपयोग करते हैं? यह सभी प्रश्न इसलिए नहीं उठ रहे कि नैतिकता और राजनीति की समझ में स्पष्टता नहीं है बल्कि इसलिए कि उनके प्रकृति, अर्थ और लक्ष्यों की समझ स्पष्ट है, जहाँ राजनीति को लाभ के संदर्भ में समझा जाता है वहीँ आचार को नैतिक न्यायसंगतता के संदर्भ में समझा जाता है

इस प्रकार जहाँ राजनीति में किसी भी कार्य का मूल्यांकन उसकी उपयोगिता पर निर्भर करता है वहीं आचारीता का मूल्यांकन उसके नैतिक रूप से सही होने पर निर्भर करता है, अर्थात जो कार्य राजनीतिक रूप से सही हो वह नैतिक रूप से गलत भी हो सकता है, ऐसा संभव है की जो कार्य समाज के लिए उपयोगी या लाभकारी हो वह नैतिक रूप से सही न हो, परन्तु क्या इसका तात्पर्य यह है की राजनीति का नैतिक मूल्यांकन संभव नहीं? या राजनीति में नैतिकता का कोई स्थान नहीं? इस बात को समझना आवश्यक है कि राजनीति को समाज से अलग करके नहीं समझा जा सकता और क्यूंकि समाज नैतिक मूल्यों के द्वारा संचालित होता है। राजनीति भी नैतिक मूल्यांकन से खुद को मुक्त नहीं कर सकती. इस प्रकार राजनीतिक कार्यों की वैधता का एक मुख्य मानक नैतिकता है।

परन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या राजनीति के क्षेत्र में सार्वभौमिक नैतिकता के सिद्धांत को लागू किया जा सकता है? अर्थात क्या यह संभव है कि जिन नैतिक मूल्यों का प्रयोग हम निजी जीवन में करते है उसका सार्वजनिक क्षेत्र में भी प्रयोग हो? इस प्रश्न का उत्तर देने में दो विचारकों का स्मरण होता है जो दो विरोधी विचारधाराओं के प्रवक्ता हैंकृइम्मानुएल कांट और मेकियावेली. जहाँ एक ओर कांट सार्वभौमिक नैतिकता की बात करता है और निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों में एक ही प्रकार के नैतिक मूल्यों के प्रयोग को स्वीकृति देता है, वहीं

दूसरी ओर मेकियावेली दोहेरे नैतिकता का समर्थक है जो यह मानता है कि राजनीति में उन नैतिक मूल्यों को महत्व नहीं दिया जा सकता जिनका निजी जीवन में प्रयोग होता हैं। इस विरोधाभास को हम एक उदाहरण द्वारा भी समझ सकते हैं. मान लीजिये एक राजनीतिज्ञ है जो एक नैतिक मनुष्य है और वह अच्छे व उचित कार्यों को नैतिक मूल्यों के आधार पर ही करना चाहता है . परन्तु इन कार्यों को करने के लिए उसे चुनाव जीतना होगा और चुनाव जीतने के लिए उसे किसी ऐसे व्यक्ति से हाथ मिलाना होगा जो अनैतिक तरीकों का प्रयोग करता है . अब अगर यह राजनीतिज्ञ अपने निजी नैतिकता के सिद्धांतों को महत्व देगा तो वह यह समझौता नहीं करेगा . परन्तु उसे कुछ अच्छा करने के लिए चुनाव जीतना आवश्यक है, जो राजनीति का एक मुख्य उददेश्य भी है . अतः वह यह समझौता कर लेता है . यह उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है कि राजनीतिक उददेश्य की पूर्ति के लिए कभी–कभी निजी नैतिकता का बलिदान करना आवश्यक हो जाता है .

इस प्रकार राजनीतिक आचार को राजनीतिक कार्यालय के विशिष्ट और अद्वितीय कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जो कुछ नैतिक सिद्धांतों के त्याग की मांग कर सकते हैं। इस तरह यह तर्क दिया जा सकता है कि राजनीतिक नैतिकता व्यक्तिगत या निजी नैतिकता से अलग है।

राजनीति, न्याय एवं निष्पक्षता को बनाये रखने के उद्देश्य से सत्ता हासिल करने और उसे बनाये रखने का एक संघर्ष है. राजनीतिक शक्ति को हासिल करने और बनाए रखने के लिए तथा उचित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, राजनेताओं को उन तरीकों का पालन करना पड़ सकता है जो अनैतिक और अनौपचारिक हों. और यदि कोई राजनेता इन तरीकों का प्रयोग नहीं करेगा तो वह राजनीति में ज्यादा दिनों तक नहीं टिक सकता.

अतः राजनीतिक आचार कहीं न कहीं आचार और राजनीति के बीच के सम्बन्ध को जटिल बनाता है तथा साथ ही साथ राजनीति को नैतिकता के साथ जोड़ने में सहायक सिद्ध होता है. निष्कर्षतः इस बात को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता कि राजनीतिक आचार का एक अलग कार्य–क्षेत्र है परन्तु साथ ही साथ राजनीतिक आचार नैतिक मूल्यांकन को पूर्णतः अनदेखा नहीं कर सकता क्योंकि एक लोकतान्त्रिक समाज में सामाजिक मूल्यों का बहिष्कार संभव नहीं।

♦♦♦♦♦

10

नव उदारवादी आर्थिक नीति के मंच पर नैतिकता और राजनीति

कुँवर प्रांजल सिंह
शोधार्ती, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

इस लेख का प्रारम्भ एक महत्वपूर्ण कृति के विश्लेषण से किया जा सकता है, जो जॉक देरिदा और जानी वतिमो की पुस्तक रिलीजनः कल्चर मैमोरी इन प्रेजेंट, जिसका अंग्रेजी अनुवाद डेविड वेब द्वारा किया गया है। इसमे मूल आग्रह धर्म की वापसी के विचार से है, जिसमे देरिदा यह स्वीकार करते है कि धर्म का स्रोत ज्ञान तथा आस्था से है। परन्तु यह भी देखा गया है कि धर्म की वापसी को बहुत से विद्वानों ने कट्टरता के रूप में प्रसारित किया है। परन्तु सदैव यह महत्वपूर्ण बिंदु नही रहा है अपितु इसके स्वरूप तथा व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन भी आ रहा है। इसके कई कारण है जिनका विश्लेषण इस लेख की सीमा परे है।

यधपि यह लेख नवउदारवादी आर्थिक नीति को इसके मुख्य कारण के रूप में समझने का आग्रह करता है, जिसमे नैतिकता का सीधा तात्पर्य धर्म से जुड़ा हुआ माना जा सकता है, जो एक संगठित अनुशासन का रूप भी ग्रहण करने लगा है। जिसमे नए–नए धार्मिक गुरुओं का उदय एवं उनके कॉरपोरेट सेक्टर के प्रारूप पर बनाये गए भव्य कार्यालयो जिनमे प्रबन्धन ज्ञान तथा राजनीति से पारंगत व्यक्ति विशेष सम्मिलित है। जो हमे मूल रूप से नवउदारवादी प्रक्रिया के दो पक्षों की ओर ले जाता है। एक तरफ तो नवउदारवादी प्रक्रिया ने हमे भले ही भौतिकवादी जीवन का भोगी बना दिया है। परन्तु दूसरी ओर वह धर्म को मध्यमवर्गीय जीवन मे शांति का पर्याय बनाकर प्रस्तुत करती है। जहाँ विमर्श की आधारशिला से इस पक्ष दृष्टिपात करने की आवश्यकता है कि नवउदारवादी आर्थिक व्यवस्था ने जिस तरह से सामाजिक सुरक्षा और मानवीय सबंधो को प्रभावित किया है, उसमे धर्म की वापसी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस वापसी का राजनीतिक लाभ भी हुआ है क्योंकि राजनीति अपनी पूरी प्रक्रिया में जितना महत्व भौतिक वस्तुओं की पूर्ति को देती है, उससे तीव्र गति से वह धर्म और धार्मिक स्थानों के निर्माण तथा प्रचार–प्रसार में धार्मिक महंतो को भी बड़े स्तर पर प्रयोग में ले रही है।

इसका सीधा आशय यह निकाला जा सकता है कि राजनीति अपनी भौतिकवादी हितों को साधने के लिए आस्था और धर्म का प्रयोग करती है। यह खुला खेल बाज़ार के आयात में ही पूरा होता है, जिसमे महंत सामजिक कल्याण के कार्य से पृथक होकर राजनीतिक लाभ देने और लेने की राजनीति के पक्षकार बन जाते है। जो अपने अनुयायियो को दलीय राजनीति के प्रचारक के रूप में स्थापित करने लगते है। इसका पूरा लाभ बाज़ार जो वर्तमान में एक संस्था का रूप धारण किये हुआ है, उससे जुड़ जाता है। अब आस्था किन्हीं विशेष प्रकार की

वस्तुओं को खरीदने और बहिष्कार से पहचानी जाने लगती है। यह खेल पिछले कई दशकों से भारतीय राजनीति का केंद्र बना हुआ है। जब भी कोई महत्वपूर्ण और जनविरोधी नवउदारवादी नीतियां लाई गयी, ठीक उसी समय समाचार–पत्रों के मुख्य पृष्ठों पर किसी धार्मिक अस्मिता से जुड़े विषय को भी प्रमुखता दी जाने लगती है। लोगों का ध्यान उन विषयों पर केन्द्रित रहता है। परिणामस्वरूप सार्वजनिक बहस उन विषयों पर होती रहती है एवं नीतियाँ बन जाती हैं। यह धर्म का मैक्यावली की धारणा के अनुसार उपयोग है जिसमे जनमानस को अपने अनुकूल करने के लिए धर्म को उपयोग में लाया जाता है। इसका एक पक्ष और भी है कि भारत का पूंजीवादी वर्ग भी तब तक अस्मिता की राजनीति से व्यथित नही होता, जब तक उसके उग्र होने से बाजार ही बंद न हो जाए।

♦♦♦♦♦

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

अकादमिक अनुसंधान केन्द्र भवन

गुरू तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली–110007